बाल साहित्य माला—११

समर्थ गुरु रामदास

—: और :—

उनके उपदेश

लेखक—

ठा० राजबहादुर सिंह,

सहायक सम्पादक 'सन्देश'

पहिली बार] फरवरी १६३३ [मूल्य तीन आने

प्रकाशक :—

कामता प्रसाद वर्म्मा
बाल साहित्य प्रकाशक समिति
१७१ए, हरिसन रोड, कलकत्ता

मुद्रक :—

गोविन्दराम हासानन्द
"वैदिक प्रेस"
८० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।

समर्थ गुरु रामदास

शिष्य—गुरुजी! उस दिन शिवाजीका जन्म-दिवस मनानेके लिये जो सभा की गयी थी, उसमें एक वक्ताने कहा था, कि शिवाजीको "शिवा-जी" बनानेवाले उनके गुरु समर्थ रामदास थे; आज कृपाकर उन्हीं रामदासके जीवन वृत्तान्त और उप-देशकी कुछ बातें आप बता सकें तो अच्छा हो।

गुरु—बहुत अच्छा, एक-एक करके समर्थ राम-दासके सम्बन्धमें तुम्हें सभी बातें बतलाऊँगा। पहले उनका वंश-परिचय सुनो। श्रीरामदासके पूर्वज पुरोहिताईका काम करते थे और सितारा जिलेके जाम्ब नामक गांवमें रहते थे। इनके पिताका

नाम सूर्यजी पन्त और माताका रानूबाई था। इनका घराना भगवान् रामचन्द्रका उपासक था। इसलिये इनके माता-पिता कट्टर राम-भक्त थे। ये बड़ा पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। समर्थ रामदासका जन्म १६०८ ई० में ठीक चैत मासकी रामनौमीके दिन हुआ था। ये अपने पिताकी दूसरी सन्तान थे। इनका पहला नाम नारायण था। पीछे ये "रामदास" या "श्रीसमर्थ" कहे जाने लगे। इनके बड़े भाईका नाम श्रेष्ठ रामदास था। पैथानके श्री एकनाथ स्वामीने नारायणके बचपनमें ही सूर्यजी पन्तसे कहा था, कि यह बालक एक असाधारण पुरुष होगा। दो वर्षकी ही उम्रमें श्री रामदास बोलने लग गये थे। ये सदा प्रसन्न रहते थे, रोना और दुखी होना तो मानो जानते ही नहीं थे। लड़कपनसे ही ये निडर और साहसी थे। नटखट भी बड़े थे। भूत-प्रेत वगैरह किसी भी चीज़का भय दिखलानेपर डरते नहीं थे। खेलने-कूदनेमें भी सब लड़कोंसे बाज़ी मार ले जाते। गांवके लड़कोंकी एक टोली बनाकर, ये उसके अगुआ बन

बैठते, और वह टोली जगह-जगह उपद्रव मचाती फिरती थी।

शिष्य—तो क्या गुरुजी, वे पढ़ते-लिखते नहीं थे, जो खेल-कूद और उपद्रव करनेमें ही लगे रहते थे।

गुरु—पढ़ना-लिखना तो इन्होंने बादमें सीखा। पहले लड़ाई-झगड़ेमें ही इनका मन लगता था। जब ८ वर्षके हुए, तो एक दिन अपने बड़े भाई श्रेष्ठसे बोले, कि मुझे धार्मिक दीक्षा दो। भाईने कहा, कि समय आने दो, तब तुम्हें दीक्षा दी जायगी। इसपर नारायण, घरसे भागकर गांवके पास ही, हनुमानजीके मन्दिरमें चले गये और वहां दिन-रात प्रार्थना करते रहे। कहा जाता है कि रातको उन्हें एक अद्भुत प्रकाश दिखलाई पड़ा, जिसके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्रने स्वयं आकर उन्हें दर्शन और दीक्षा दी। घरवाले घबड़ाकर लड़केकी खोज करने लगे, तो दूसरे दिन वे मन्दिरमें मिले। इस घटनाके बादसे वे भक्तिकी ओर झुके और खेलना-कूदना तथा शरारत करना बन्दकर दिया। जब ये १२ वर्षके हुए, तभी इनकी माता और गांवके

लोगोंने इनकी शादीका इन्तज़ाम शुरू कर दिया। इनके लाख इनकार करनेपर भी, इनकी माताने इनका विवाह करनेकी ज़िद नहीं छोड़ी। नारायण ऐसी दशामें बड़े संकटमें पड़ गये— एक ओर तो माताका अगाध प्रेम और दूसरी ओर विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा। दिन-पर-दिन लोग उन्हें विवाह करनेके लिये मजबूर करने लगे। गांववाले हारे, तो रिश्तेदार बुलाये गये— ऐसी हालतमें वे तंग आकर गांवके बाहर जा एक ऊँचे पेड़पर चढ़ गये और जो कोई पेड़के नीचे जाता, उसे ऊपरसे पत्थर फेंक कर मारने लगे। लोगोंने समझा नारायण पागल हो गया है; और उनके दोस्त-मित्रों तथा नातेदारों तकने पेड़के नीचे जा-जाकर उन्हें "पागल हो गया" "पागल हो गया" कहने लगे। नारायण इससे बड़े दुखी हुए—लड़के तो थे ही—क्रोध जो आया, तो उसी पेड़के नीचेवाले कुएंमें कूद पड़े। लोग बहुत घबराये और दौड़कर रस्सी आदि लाये। कई चतुर तैराक कुएंमें उतरे, पर बड़ी कोशिश करने

पर भी नारायणका पता नहीं लगा, मजबूर होकर लोगोंने उनके घर वालों को ख़बर दी, कि नारायण कुएं में डूब मरे। उनकी मां और भाई श्रेष्ठ दौड़े हुए कुएं पर आये। मां बहुत रोने पीटने लगीं, लेकिन लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, जब श्रेष्ठके आवाज़ देनेपर नारायण खुद कुएंमेंसे निकल आये। कूदनेके कारण उनके माथेमें एक बड़ा घाव हो गया था जिसका चिन्ह जन्म भर बना रहा।

शिष्य—तो क्या कुएं में गिरनेसे उनकी शादी नहीं हुई?

गुरु—हां, उस समयके लिये तो शादी रुक गयी, पर गांवके पुरोहितने कुछ दिनों बाद नारायणकी मांको फिर उभाड़ा। आख़िर उनकी मांने उन्हें जबर्दस्ती राज़ी कर लिया। विवाहकी सब तैयारी की गयी। विवाहके वक्त जब वर-कन्याके गँठ-बन्धनका समय आया, तो पण्डितने विवाह-पद्धतिसे "सावधान, सावधान" शब्द उच्चारण किया। नारायणके मनपर इस "सावधान" शब्दका ऐसा गहरा असर पड़ा, कि

उन्होंने समझा, कि ईश्वर उन्हें सावधान कर रहे हैं। वे फौरन उठे और विवाह-मण्डप छोड़ बड़े ज़ोरसे भागे। "दूल्हा भागा", "दूल्हा भागा" कहकर लोगोंने शोर मचाया और कुछ लोग उन्हें पकड़नेके लिये दौड़े, पर पकड़ नहीं सके और उदास हो-होकर लौट आये। लोगोंको बड़ा दुख हुआ, और अन्तमें उस कन्याका विवाह एक दूसरे युवकके साथ हुआ। यह घटना १६२० ई० की है।

शिष्य—गुरुजी, आखिर नारायण विवाहसे इतनी घृणा क्यों करते थे ?

गुरु—असलमें वे विवाहके विरुद्ध तो नहीं थे, क्योंकि अपने महान् ग्रन्थ "दास बोध" में भी उन्होंने विवाहकी निन्दा न करके गृहस्थ-धर्म पालन करनेवालोंकी बड़ी प्रशंसा की है; किन्तु अपने आपको विवाह-बन्धनमें वे इस लिये नहीं फँसाना चाहते थे, कि उन्हें अपनी दीक्षावाली रातसे (जब उन्हें भगवान्‌के दर्शन हुए थे) यह मालूम हो गया था, कि उन्हें संसार में बहुत

बड़ा कार्य करना है और जिसे ब्रह्मचारी रहकर ही पूरा कर सकते हैं। अविवाहित रहनेके बलपर ही वे महाराष्ट्रका उद्धार कर सके थे।

शिष्य—परन्तु "नारायण" से बदलकर उनका नाम "रामदास" क्यों पड़ गया ?

गुरु—विवाह-मण्डपसे भागकर नारायण जब जंगलमें गये, तो वहाँ एक बर्गदके खोंडरमें आसन जमाया। तीन दिन तक तो वे बिना कुछ खाये उसीमें पड़े रहे। इसके बाद कृष्णा नदीके किनारे-किनारे नासिक (पंचवटी) की ओर बढ़े। वहाँ पहुंचकर उन्होंने श्री राममन्दिरमें भगवान्‌के दर्शन किये और वहाँसे २॥ मील दूर तकली गाँवमें निवास करने लगे। यहाँ वे बिल्कुल तपस्या-पूर्ण जीवन बिताने लगे। प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्तमें ही उठ कर गोदावरीके पवित्र जलमें स्नान करनेको कमर तक जलमें प्रवेश करते, और स्नान-संध्या तथा मन्त्र जप करके ठीक १२ बजे जलसे निकलते थे। संध्या और जपमें वे ऐसे मग्न हो जाते, कि मछलियाँ और

कछुए उनके शरीरको काट-काट कर घाव कर देते, पर वे जलमेंसे नहीं निकलते थे। जलसे निकल कर भिक्षा माँग लाते और भगवान्‌को भोग लगाकर केवल एक बार प्रसाद पाते थे। इसके बाद फिर भजनमें लग जाते और बहुत रात्रि बीते तक भजन करते रहते थे। रहते वे बिल्कुल एकान्तमें ही थे। जिस समय वे ऐसी कठिन तपस्या कर रहे थे, उनकी अवस्था केवल १२ वर्षकी थी। शरीरपर एक मात्र लंगोटी ही उनका परिधान वस्त्र था। हाथमें एक कुबड़ी रखते थे। इस तपस्याके बाद उनका रूप बिल्कुल बदल गया। उनके चेहरेसे आध्यात्मिक ज्ञानकी आभा झलकने लगी। १२ वर्षतक वे उसी स्थानमें तपस्या करते रहे और बादमें अपना नाम रामदास रख लिया।

शिष्य—१२ वर्षके बाद वे फिर कहाँ गये ?

गुरु—फिर वे पैदल ही तीर्थ करने निकले, क्योंकि उस ज़मानेमें रेल नहीं थी। काशी, अयोध्या, मथुरा-वृन्दावन होते हुए द्वारका जी पहुंचे और वहाँसे काश्मीरको रवाना हुए। काश्मीरसे फिर बद्रीनाथ केदारनाथ और मानसरोवर आदिके दर्शन करने गये। पहाड़से नीचे आकर वे जगन्नाथ जीकी यात्राको चले और वहाँसे रामेश्वर होकर लङ्कातक पहुंचे। कुछ दिनों तक वहाँ भी भ्रमण करनेके बाद वापसीमें महाबालेश्वर होते हुए नासिक आये। इस प्रकार सारे भारतका तीर्थाटन उन्होंने १२ वर्षमें पूरा किया था।

शिष्य—तीर्थ यात्राके बाद उन्होंने फिर क्या किया ?

गुरु—इसके बाद यद्यपि रामदासका विचार धर्म-प्रचार करनेका था, पर उन्होंने उस समयके महाराष्ट्रकी दशा देख कर, अपने धर्म-ज्ञानको राजनीतिक ढंगपर चलानेका निश्चय किया। उस समय मुगलोंके अत्याचार और लूट-पाटसे सारा महाराष्ट्र त्राहि-त्राहि पुकार रहा था। धीरे-धीरे मराठे सरदार मुगलोंकी अधीनता स्वीकार करके उनके अधीनस्थ जागीरदार बनते जा रहे थे। मुगलोंकी सेना प्रजाकी खड़ी फसलतक लूट लेती और प्रजा अकालसे भूखों मर रही थी। ऐसे समयमें श्री रामदासने उस बढ़ते हुए यवनत्व और यवन साम्राज्यका दल तोड़नेके लिये लोगोंको धार्मिक प्रवृत्तियोंमें उत्तेजना फैलाकर धर्माभिमानी बना दिया, जिससे बढ़ते हुए मुगल-सम्राज्यका वेग रुक गया।

शिष्य—तो १२ वर्षके बाद तीर्थसे लौटकर वे कहाँ गये?

गुरु—तीर्थसे लौट कर वे अपनी जन्म भूमिको गये। वहाँ उन्होंने अपनी माता, बड़े भाई

और गाँव वालोंसे भेंट-मुलाकात तो अवश्य की, किन्तु अधिक दिनतक नहीं ठहरे; क्योंकि उन्हें तो जनताकी सेवा करनेकी लगन थी। इसलिये उन्होंने घर छोड़ कर जनतामें धार्मिक भावना जागृत करके उसके द्वारा देशकी राजनीतिक दुर्दशा दूर करनेकी ठानी। कुछ दिनोंतक तो जारन्दा गुफामें बैठकर इसका उपाय सोचते रहे। पीछे जब उन्होंने अपना कार्यक्रम बना लिया, तो सितारा जिलेकी चाफल घाटीमें आये और वहाँ सन् १६४८ ई० में श्रीराम मन्दिरकी स्थापना की तथा "श्रीरामनौमी" और "हनुमान जन्मोत्सव" आदि कई उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाये। जिनमें भजन कीर्तनके साथही साथ राष्ट्रीय भावना भी लोगोंमें भरी जाने लगी। ये उत्सव यद्यपि महाराष्ट्रीय हिन्दुओंमें पहले भी मनाये जाते थे, पर श्रीरामदासने इन्हें नया जीवन देकर बहुत विशाल बना दिया। श्रीनारायण बोआ, जयराम स्वामी, रङ्गनाथस्वामी, साधु तुकाराम और मौर्य देव, महाराष्ट्रके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ज्ञानी साधु

रामदासकी ओर आकर्षित हुए और इनसे मिल कर इनकी योग्यतापर मुग्ध हो गये। उन्हीं लोगोंने इन्हें "समर्थ" की उपाधि दी। तब-से ये समर्थ राम-दास कहे जाने लगे। इन सब साधुओंके मिलने-जुलने और प्रचार करनेसे पीछे सारे महाराष्ट्रमें ये उत्सव बड़े धूम-धामसे मनाये जाने लगे, जिनका राजनीतिक फल यह हुआ, कि सारे महाराष्ट्रके हिन्दू संगठित हो गये।

शिष्य—तो क्या समर्थ रामदास इसी प्रकार कीर्तनों और उत्सवोंके द्वारा ही प्रचार करते रहे या उन्होंने कुछ पुस्तकों आदिकी भी रचना की थी ?

गुरु—उन्होंने "मानसिक शिक्षा" तथा "दास बोध" नामके दो अमर ग्रन्थोंकी रचना की, जिन-के पदोंका महाराष्ट्रमें घर-घर प्रचार हुआ और जिनको पढ़ कर लोग अब भी आत्मिक आनन्द उठाते हैं। "मानसिक शिक्षा" के द्वारा तो उन्होंने लोगोंको अपने धर्मकी ओर विशेष रूपसे मन लगानेका उपदेश दिया। इस ग्रन्थके पद उन-

के शिष्य गांव-गांव और घर-घरमें गाने लगे थे, "दास बोध" में उन्होंने गूढ़ धार्मिक सिद्धान्तोंकी व्याख्या की है।

शिष्य—पर गुरुजी, उनका कौनसा काम अधिक प्रभावशाली था, जिसके कारण वे सारे महाराष्ट्रमें ऐसे सर्वप्रिय बन गये ?

गुरु—लोगोंपर अधिक प्रभाव तो उनके प्रचार-कार्यका पड़ा, क्योंकि महाराष्ट्रके लगभग सभी प्रधान केन्द्रोंमें उन्होंने एक-एक मठ स्थापित करके, उनमें अपने एक-एक सुशिक्षित शिष्य रख दिये थे। इस ढंगसे सारे महाराष्ट्रमें इनके प्रचार-कार्यका जालसा बिछ गया। क्योंकि सारे महाराष्ट्रमें इन्होंने ऐसी १५० मठें स्थापित की थीं।

शिष्य—इन मठोंमें उनके शिष्य लोग क्या करते थे ?

गुरु—ये हनुमानजीकी मूर्त्तिकी पूजा-अर्चना करते, पासके गांवोंसे बारी-बारी भिक्षा मांग लाते और दिन-रातमें केवल एक बार कुछ भोजन करके लोगोंको उपदेश देते थे। प्रत्येक

मठ आस-पासके गांव वाले लोगोंके मिलनेका सभा-स्थल हो गयी थी। जिस समय समर्थ रामदास इस प्रकार महाराष्ट्रके कोने-कोनेमें सङ्गठन और धर्माभिमानका बीज बो रहे थे, उस समय सारा महाराष्ट्र जो मुगलोंके आक्रमण और अत्याचारसे दब गया था, फिर अपने अन्दर एक नये जीवनका अनुभव करने लगा।

शिष्य—आपने कहा है, कि वे धार्मिक शिक्षाके द्वारा राजनीतिक कार्य भी करते थे—यह कैसे सम्भव है?

गुरु—सम्भव क्यों नहीं है। समर्थ रामदासका तो यह कथन था, कि धर्मको राजनीतिसे अलग किया ही नहीं जा सकता। उन्होंने "दास बोध" में यह भी लिखा है, कि भगवद्गीताके बाद यदि संसारमें कोई सबसे अधिक आवश्यक चीज है, तो वह है राजनीति।

शिष्य—आपने राजनीतिको धर्ममें मिश्रित होने और उसे उसका एक अंग माननेकी भी बात अभी बतलायी है। यह समर्थ रामदासके उपदेशों

मेंसे आप बतला रहे हैं या उनके कार्यों से आपने उनके ऐसे विचारोंका अनुमान लगा लिया है ?

गुरु—नहीं, अनुमानसे नहीं; यह बात दास बोधमें स्पष्ट लिखी हुई है, कि सर्व प्रथम इष्टदेव-की आराधना और पूजा, और उसके बाद राज-नीतिका बुद्धिमता पूर्ण विवेचन—हमारा जीवन इन्हीं दो क्रियाओंसे प्रफुल्लित होना चाहिये। यदि समर्थ रामदास उस समय ऐसा उपदेश न देते, तो जनतामें राजनीतिक जाग्रति न उत्पन्न होती और न "महाराष्ट्र" कभी एक राष्ट्र बनता।

शिष्य—तो उन्होंने राजनीतिको धर्ममें मिला-नेकी शिक्षा किस प्रकार दी ?

गुरु—समर्थने इस बातका अनुभव करके, कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंमें-से शारीरिक शक्ति सबसे प्रथम और सबसे अधिक आवश्यक है, श्री हनुमानजीकी उपासना-की शिक्षा दी। क्योंकि श्री हनुमानजी ऐसे देवता हैं, जिनमें इन तीनों शक्तियों और विशेष करके शारीरिक शक्तिको देनेका अपार सामर्थ्य है।

उन्होंने १२ वर्षतक श्री हनुमानजीकी उपासना की थी। महाराष्ट्रको इस समय इन तीनों शक्तियों-की—और विशेष करके शारीरिक शक्तिकी आ-वश्यकता थी। मुगल बादशाहोंकी दुष्टताका उन दिनों खूब बल बढ़ रहा था, उस दुष्टताको इन्हें दबाना था। हनुमानजीको "दुष्ट-दलन" भी कहते हैं—साथ ही ब्रह्मचर्यके सबसे बड़े रक्षक भी श्री बजरंगबली हैं, यही सब बातें सोचकर समर्थ-राम दासने स्थान-स्थानपर "मारुती" या हनुमान-जीकी मूर्त्ति स्थापित करवाकर उनकी उपासना-पर बहुत अधिक बल दिया। अपने शिष्योंको भी उन्होंने इसी प्रकारकी धार्मिक और राजनीतिक शिक्षा देकर उन्हें मठोंमें जा-जाकर जनतामें इस संयुक्त शिक्षाका प्रचार करनेकी आज्ञा दी। इसका फल यह हुआ, कि श्रीहनुमान जी सारे महारष्ट्रके उपास्यदेव बन गये। जैसे देवता या इष्टकी उपासना और भक्ति की जाती है, वैसी ही शक्ति उपासक या भक्तमें भी आती है—इसी लिये श्रीहनुमानजीकी उपासनासे सारा

महाराष्ट्र बलशाली बनकर दुष्टदलनमें समर्थ हुआ। इस प्रकार तुम देखोगे, कि श्री रामदासने धर्ममें राजनीतिको मिलाकर एक ऐसा बड़ा काम कर दिखलाया, जो इतिहासमें अपने ढंगका अनूठा है; क्योंकि स्वराज्यके लिये स्वधर्म और स्वधर्मके लिये स्वराज्यका आश्रय लेकर सफल होने वाले साधुओंमें केवल समर्थ रामदास ही एक ऐसे हुए हैं।

शिष्य—किन्तु आपने यह तो बतलाया ही नहीं, कि शिवाजी महाराज उन्हें कब और कैसे मिले।

गुरु—जिस समय समर्थ रामदास मठोंकी स्थापना और धर्म-प्रचारका कार्यक्रम जारी करनेके बाद घूम-घूमकर सब जगह अपनी कार्य-पद्धतिका निरीक्षण कर रहे थे, उस समय उन्हें मालूम हुआ, कि उनके आदर्शको पूरी सफलता मिल रही है, और लोगोंमें धार्मिक भावनाओंके साथ राष्ट्रीय भावनायें भी जागृत हो चुकी थीं। महाराष्ट्रके गाँव-गाँव और झोंपड़ी-झोंपड़ीमें समर्थ रामदास-

का नाम पहुंच चुका था और प्रत्येक आदमी समर्थके मठधारी शिष्योंके उपदेश सुन-सुन कर धर्मपर निछावर होनेके लिये तैयार-सा दीखता था। जिस समय समर्थ रामदास इस प्रकार अपना निरीक्षण-कार्य कर रहे थे, उसी समय शिवाजी महाराजने साधु तुकारामसे दीक्षा लेनेकी अभिलाषा प्रकट की। इसपर तुकारामने उनसे कहा, कि आपको तो समर्थ रामदाससे दीक्षा लेनी चाहिये। क्योंकि आप जैसे प्रतापी राजाको सर्व-मान्य महात्मासे ही दीक्षा लेनी उचित है। शिवाजी महाराज पहले हीसे समर्थ रामदास और उनके धार्मिक आन्दोलनका हाल जानते थे और उनकी इच्छा भी उनसे मिलनेकी थी, किन्तु समर्थ उस समय किसी निश्चित समय और किसी ख़ास स्थानपर नहीं मिल सकते थे। यहाँतक, कि उनके शिष्योंतकको भी उनके कार्यक्रमका पता नहीं रहता था। साधु तुकारामजीसे समर्थ रामदासकी विशेष प्रशंसा सुननेके बाद शिवाजी-के हृदयमें समर्थके दर्शनकी बड़ी लालसा हुई।

कई बार जंगलों और मठोंमें तलाश करनेपर भी जब उन्हें समर्थके दर्शन नहीं हुए, तो एक दिन उन्होंने अनशन व्रत किया और प्रतिज्ञा की, कि जब तक रामदासके दर्शन न होंगे, तब तक अन्न-जल न ग्रहण करूंगा। उधर रामदासको भी यह मालूम हो चुका था, कि इस समय जब कि सारे महाराष्ट्रके सरदार मुगल साम्राज्यसे जागीरें ले-लेकर उनकी अधीनता स्वीकार कर रहे हैं, एक वीर मराठा सरदार ऐसा भी पैदा हो गया है जो स्व-धर्म और स्वराज्यकी रक्षाके लिये सारे महाराष्ट्रको एक ही राजनीतिक सूत्रमें बाँधनेका प्रयत्न कर रहा है—और उसका नाम है शिवाजी। ऐसा मालूम होता है, कि समर्थ रामदासको यह मालूम हो गया, कि शिवाजी उनसे मिलनेके लिये उत्सुक हैं और इसके लिये उन्होंने अन्नजल त्याग दिया है, अतः दूसरे ही दिन समर्थ रामदासका पत्र-वाहक चिट्ठी लेकर शिवाजीके पास आया।

शिष्य—गुरुजी, उस चिट्ठीमें क्या लिखा था?

गुरु—वह चिट्ठी तो बहुत लम्बी थी, पर

उसका सारांश इस प्रकार था:—

"सारे तीर्थ स्थान और देव मन्दिर भ्रष्ट किये जा रहे हैं; पृथ्वीपर अधर्मका राज्य हो गया है। सर्वशक्तिमान् परमात्माने आपके हृदयमें धर्म और गोब्राह्मणोंकी रक्षाकी प्रेरणा की है। आपके पास विद्वान् पण्डितों, उपदेशकों, कवियों, राजनीतिज्ञों और तार्किकोंकी कमी नहीं है। महाराष्ट्र इस समय आप हीकी ओर आँख लगाये हुए है। मैं इतने दिनोंसे आपकी सीमामें रहता हूं, किन्तु मालूम होता है अभी तक आपने मेरी ओर ध्यान देनेको कृपा नहीं की। इसका कारण नहीं मालूम होता। आपके मंत्रीगण तथा आप स्वयं बुद्धिमान हैं, इसलिये आपको दोबारा यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, कि धर्मको पुनः जीवित करनेके गौरवको भूल नहीं जाना चाहिये। राजनीतिके विशाल क्षेत्रसे आपका मन ऐसे अवसरपर इधर आकर्षित करनेके लिये क्षमा चाहता हूं।" इस पत्रको पाते ही शिवाजीने पत्र-वाहकको बहुत-सा इनाम आदि देकर उसके हाथ यह उत्तर भेजा,

कि "मैं तुरन्त आपके चरणोंमें उपस्थित होनेको रवाना हो रहा हूं।"

शिष्य—तो क्या शिवाजी उसी दिन उनसे मिलने चले गये ?

गुरु—जाते क्यों न ? उन्होंने तो प्रतिज्ञा कर रखी थी, कि जबतक समर्थके दर्शन न करूंगा, तबतक अन्नजल न ग्रहण करूंगा। वे उसी दिन रामदासकी सेवामें पहुंचे और उनसे यथा विधि दीक्षा ली। यह घटना १२ अप्रैल सन् १६४६ ई० की है।

शिष्य—दीक्षा लेनेके बाद शिवाजीने क्या काम किया ?

गुरु—दीक्षा लेनेके बाद समर्थ रामदासके ज्ञानोपदेशसे शिवाजी संसारसे विरक्त होने लगे और समर्थसे कहा, कि "हे गुरुजी, मेरा मन अब राज-काज और सांसारिक वैभवमें नहीं लगता इसलिये मुझे तो संसारसे अलग होनेकी आज्ञा दीजिये।" किन्तु समर्थने यह बात नहीं मानी। उन्होंने कहा—"नहीं, तुम क्षत्रिय हो। तुम्हारा

धर्म है प्रजाका पालन करना। तुम्हारी अवस्था अभी केवल २२ वर्षकी है। देखते नहीं हो संसार म्लेच्छोंके भयसे कांप रहा है—क्या ऐसे समयमें दुष्टोंसे प्रजाकी रक्षा करना कम धर्म है। भगवान् रामने तुम्हें हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिये पैदा किया है। तुम्हें राज-धर्मसे विमुख नहीं होना चाहिये।" इसके बाद शिवाजीने मठोंको आर्थिक सहायता और सनदें दीं और समर्थसे प्रार्थना की, कि यदि आज्ञा हो तो मैं आपकी सेवामें साथ-साथ ही रहूं। पर समर्थने उन्हें ऐसा करनेसे मना किया और कहा, कि आप तो अपना राजकाज ही देखें—मैं संन्यासी हूं, वन-वन फिरता हूं, मेरे साथ रहनेसे आपका राज-काज चौपट हो जायगा और देशपर विदेशियों और विधर्मियोंका राज हो जायगा।" शिवाजीने गुरुकी यह बात मान ली और उनके साथ रहनेके बजाय सप्ताहमें एक बार उनके दर्शन करनेकी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहे। प्रति सप्ताह ये समर्थके दर्शनको जाते और उनसे विगत सप्ताहके समाचार बतलाकर आगेके कार्यक्रमको भी बत-

लाते थे। यह सप्ताहमें एक बार दर्शन करनेका क्रम भी जारी नहीं रह सका, क्योंकि शिवाजीको आगे चल कर बड़े भारी राजनीतिक मामलोंमें फँसना पड़ा। शिवाजीने रामदाससे प्रार्थना की, कि आप जंगलमें न रहकर रायगढ़ या प्रतापगढ़में रहिये, जिससे मैं सरलतासे आपके दर्शन कर सकूं। पर समर्थने कहा—"मैं शहर या किलेमें नहीं रह सकता। मैं तो वनवासी हूं। दूसरी बात यह भी है, कि शास्त्रकी आज्ञा है, कि राजा, अग्नि और जल पर विश्वास न करो।" आप आखिरकार एक राजा हैं—मैं सदा आपके साथ नहीं रह सकता। इस बातसे शिवाजी ऐसे दुखी हुए, कि उन्होंने राज-काज देखनेमें भी एकमात्र ढील कर दी। यह हाल देखकर समर्थ रामदास नगरमें रहनेको राजी हो गये और शिवाजीने पारालीमें एक किला और एक बड़ी मठ बनवा दी। इस प्रकार समर्थके पास रहनेसे शिवाजीको तो यह लाभ हुआ, कि उन्हें उनसे परामर्श लेनेमें सुविधा हो गयी और रामदासको यह लाभ हुआ, कि उनके धार्मिक

आन्दोलनको खूब राजकीय सहायता मिली। उसका फल यह हुआ, कि जहां कहीं आरम्भमें शिवाजीको महाराष्ट्रके किसी-किसी भागमें कम सफलता मिली थी, वहां भी उनके पाँव जम गये और थोड़े ही समयमें मराठोंकी एक ऐसी शक्ति बन गयी, जिसका नाम सुनकर लोगोंमें भयका संचार होने लगा।

शिष्य—तो गुरु जी, फिर क्या समर्थ रामदास जन्म भर वहीं रहे या और कहीं भी गये?

गुरु—सन् १६५२ ई०में समर्थ रामदास फिर अपनी माता और भाईके दर्शन करते अपनी मातृ-भूमि जैम्ब गये थे। उसके बाद सन् १६५५ में उनकी माताका और सन् १६५७ ई० में उनके भाई श्रेष्ठका देहान्त हो गया। सन् १६७४ ई० में "शिवाजीका राज्याभिषेक हुआ, जिसमें उन्हें "गो-ब्राह्मण प्रतिपालक श्री छत्र पति महाराज" की उपाधि दी गयी। इस दरबारके प्रधान परिचालक समर्थ रामदासही थे। राज्याभिषेकके बाद शिवाजीने रामदासको गुरु-दक्षिणामें अपना

सारा राज्य दान दे दिया, पर पीछे समर्थ राम-दासने समझाया, कि हमारा काम राज्य भोगने और संसारमें फँसनेका नहीं है। इसलिये अब मैं आपके दिये दानको न लौटाते हुए अपनी ओरसे आपको राजा नियत करता हूं और आजसे झण्डेका रंग लाल होगा और उसपर हमारे भगवान्का निशान होगा। शिवाजीने इस आज्ञाको शिरोधार्य किया। और तबसे महाराष्ट्रका "भगवा झण्डा" एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय झण्डेके रूपमें प्रसिद्ध हो गया।

शिष्य—किन्तु गुरु जी आपने यह नहीं बतलाया, कि समर्थ रामदासके मिलनेपर शिवा-जीके राज्यकी क्या दशा हुई ?

गुरु—तुम्हारा प्रश्न ठीक है। समर्थके मिलने-पर राज्यकी शक्ति चौगुनी हो गयी। क्योंकि समर्थके सारे मठाधीश शिष्योंने प्रजामें शिवाजीके राज्यकी धर्मानुकूलताका पक्का विश्वास जमा दिया, जिससे उनकी सेवा आदिमें लोग बड़ी संख्यामें भर्ती होने लगे। असलमें महाराष्ट्र साम्राज्यकी

सच्ची दृढ़ता तो तभी कायम हो गयी जब शिवा-जीने समर्थ रामदासकी शिष्यता स्वीकार की।

शिष्य—उनके महान् ग्रन्थ दासबोधमें किस बातका वर्णन है?

गुरु—उनके ग्रन्थ दासबोधमें समाज-शास्त्र, वेदान्त-शास्त्र और धार्मिक सिद्धान्तोंकी व्याख्या है। बड़े-बड़े गूढ़ विषय इसमें सरलताके साथ समझाये गये हैं। यह ग्रन्थ इतना प्रामाणिक और उत्तम है, कि फरवरी सन् १६८१ (माघ शुक्ल ६ संवत् १६०३) में जब समर्थ रामदासका शरीरान्त होने लगा, तब उन्होंने कहा, कि जिसे मुझसे वार्तालाप करना हो, वह मेरे "दासबोध" को पढ़े; क्योंकि मेरे शरीरान्तके बाद यही मेरे विचारोंका प्रचार करेगा। महाराष्ट्रमें अब भी इनकी जयन्ती दास-नवमीके नामसे मनायी जाती है और इनके ग्रन्थ दासबोधका घर-घर प्रचार है।

शिष्य—समर्थ रामदासके उपदेशोंका सार क्या है?

गुरु—उनके खास-खास उपदेशोंका सार इस प्रकार है:—

"सबके साथ नम्रता और प्रेम पूर्वक व्यवहार करो।"

"मूर्खों और दुष्टोंकी मूर्खता और दुष्टताकी निन्दा करनेकी अपेक्षा उनके गुणों और भलाइयोंकी प्रशंसा करो, क्योंकि प्रत्येक आदमीमें चाहे वह कैसा भी मूर्ख या दुष्ट क्यों न हो, कुछ न कुछ गुण अवश्य होते हैं।"

"प्रत्येक आदमीके जीवनसे हमें कुछ न कुछ शिक्षा मिलती है।

जनपदको प्रसन्न करकेही उससे अधिकसे अधिक काम लिया जा सकता है।"

अपने शिष्योंको वे नीचे लिखे उपदेश दिया करते थे:—

१—(क) त्यागमय जीवन व्यतीत करो।

(ख) नित्य धर्म ग्रन्थोंका पाठ करो और अपना कर्त्तव्य पूरा करो।

(ग) गांव-गांवमें कीर्तन करो, पर उसके

बदलेमें किसीसे कुछ लेना मत स्वीकार करो।

(घ) सबको औषधियों द्वारा तथा अन्य आवश्यक रीतिसे सहायता देते रहो।

(ङ) लोगोंके हृदय और मनोवृत्तियोंका अध्ययन करो।

उनका कहना है, कि "जो आदमी दूसरोंके हृदयकी बात समयके परिवर्त्तन, परिस्थितियोंके चक्कर और देशकालको पहचाननेका सामान रखता है, उसके लिये संसारमें कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो वह पूरा न कर सके।"

२—शरीरका कोई ठिकाना नहीं है, कि यह पानीके बुल-बुलेकी भाँति कब मिट जाय, इसलिये सदा सत्कार्य तथा दूसरेकी सहायतामें लगे रहना चाहिये। दृढ़ विचार वाले मनुष्य संसारमें सब कुछ कर सकते हैं। एकान्तमें विचारनेसे मनुष्यको अपने कर्तव्यका ज्ञान सदा होता रहता है।

३—बिना कठिन कार्य किये कुछ फल नहीं मिलता। राज्यको कौन कहे साधारण चीज़ भी बिना परिश्रम नहीं मिलती। कोई बेकार तो रही

नहीं सकता, यह प्रकृतिका नियम है—यदि वह अच्छा काम न करेगा, तो स्वभावतः उससे बुरे ही काम होंगे। इसलिये मनुष्यको सदा सत्कार्यमें लगा रहना चाहिये।

४—देहकी नश्वरता और आत्माकी अमरताको समझो और मृत्युके भयको दूर भगा कर काम करो।

५—अपना उद्देश्य केवल काम करनेका होना चाहिये, फल देखनेका नहीं। इससे यह स्पष्ट है, कि किसी भी अवस्थामें हमें नाम कमाने या यश पानेका अभिलाषी नहीं होना चाहिये।

६—संसारमें कोई भी कार्य स्वार्थवश नहीं करना चाहिये।

७—जो दूसरोंके हृदयपर अधिकार करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये, कि वे पहले मधुरभाषी बनें। क्योंकि संसारमें मित्रता ज़बानकी मिठाससे ही होती है।

८—दूसरोंपर क्रोध न करो; किसीसे कोई अपराध हो जाय, तो उसे क्षमा कर दो। चित्त

सदैव शा . . . रक्खो और सबके साथ सहानुभूति प्रकट करो।

९—इन प्रत्येक विषयोंमें पूर्णता प्राप्त करनेका प्रयत्न करो।